E-Learning material prepared by Dr. Dhananjay Vasudeo Dwivedi, Assistant Professor, Department of Sanskrit, Dr. Shyama Prasad Mukherjee University, Ranchi

निघण्टु और निरुक्त के व्याख्याकार (टीकाकार)

डा० धनञ्जय वासुदेव द्विवेदी

सहायक प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,

डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी विश्वविद्यालय, राँची

यह ज्ञात तथ्य है कि निघण्टु वैदिक-शब्दों का संग्रह है और निरुक्त उसी पर भाष्य है। शब्दकोश-व्याख्या की आवश्यकता तो होती ही नहीं और उसके भाष्य की व्याख्या भी क्या होगी? निरुक्त स्वयं व्याख्यारूप में है, तथापि भारतीय मस्तिष्क कभी भी किसी ग्रन्थ को निर्व्याख्यान नहीं देख सकता है चाहे वह ग्रन्थ सरलतर क्यों न हो। हितोपदेश की व्याख्यायें भी क्या नहीं हैं? यही कारण है कि निघण्टु और निरुक्त पर भी टीकायें ही नहीं, भाष्य लिखे गये। इनका संक्षिप्त वर्णन किया जाता है-

(क) स्कन्दस्वामी (६०० ई०)-

निरुक्त की उपलब्ध व्याख्याओं में इनकी व्याख्या सबसे प्राचीन है। इन्होंने अत्यन्त सरल शब्दों में निरुक्त के बारह अध्यायों की व्याख्या की है। इनकी व्याख्या दुर्गाचार्य की टीका के समान विस्तृत तथा निरुक्त के प्रत्येक शब्द का उद्धरण देनेवाली नहीं है। निरुक्त के प्राचीनतम अर्थ का ज्ञान पाने के लिए यह टीका सर्वोत्तम है। स्कन्दस्वामी का काल डा० लक्ष्मणसरूप ने सप्रमाण सिद्ध किया है। स्कन्दस्वामी स्वयं हरिस्वामी के गुरु थे। हरिस्वामी ने शतपथ ब्राह्मण की टीका लिखी है और ये मालवाधिपति के यहाँ धर्माव्यक्ष थे। ये लिखते हैं-

यः सम्राट् कृतवान्सप्त सोमसंस्थांस्तथर्क् श्रुतिम्।

व्याख्यां कृत्वाध्यापयन्मां स्कन्दस्वाम्यस्ति मे गुरुः।।

इससे पता चलता है कि स्कन्द ने ऋग्वेद की व्याख्या भी लिखी थी। स्वयं स्कन्दस्वामी उक्त ऋग्भाष्य के प्रथमाध्याय के अन्त में लिखते हैं-

वलभीविनिवास्येतामृगर्थागमसंहृतिम्।

भर्तृध्रुवसुतश्चक्रे स्कन्दस्वामी यथास्मृति।।

ऋग्भाष्य तथा निरुक्तभाष्य के लेखक की अभिन्नता देवराजयज्वा के उस विवरण से ज्ञात होती है जिसमें उन्होंने 'प्रयस्' तथा 'श्रवस्' की समानार्थता बतलायी है– "उप प्रयोभिरागतम्' इत्यादिषु निरुक्तटीकायां स्कन्दस्वामिना 'प्रयः' इत्यन्ननामोच्यते, तथा च 'अक्षिति श्रवः' इत्यादिनिगमेषु वेदभाष्ये 'श्रवः' इत्यन्ननामेति स्पष्टमुच्यते"।

स्कन्दस्वामी गुजरात की प्रसिद्ध राजधानी वलभी के निवासी थे। इनके शिष्य हरिस्वामी ने अपना शतपथ भाष्य ६३८ ई० (कलिसम्वत् ३७४०) में लिखा था। अतः स्कन्दस्वामी का समय कुछ पूर्व ७वीं शताब्दी के प्रथम चरण में मानना ठीक है। सम्भवतः ये हर्षवर्धन के समकालीन थे ।

(ख) देवराज-यज्वा (१२०० ई०)–

निघण्टु की व्याख्याओं में एकमात्र इनकी व्याख्या ही उपलब्ध है। इन्होंने निघण्टु के पदों को व्याकरण की कसौटी पर कसकर रखा है जिसके लिए इन्होंने पाणिनि और भोज के व्याकरणों से सहायता ली है। सभी शब्दों को सिद्ध कर दिया गया है। पदों की व्याख्या में इन्होंने स्थान-स्थान पर आचार्यों के नामों का उल्लेख किया है जिससे इनके काल निर्णय में बड़ी सहायता मिलती है। इन्होंने अपनी व्याख्या के आरम्भ में एक छोटी-सी भूमिका भी दी है जिसमें अपने पूर्ववर्ती आचार्यों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए उनके नाम भी लिये हैं। निघण्टु के पाठ के संशोधन पर भी इन्होंने काफी प्रयत्न किया है क्योंकि ये लिखते हैं कि वेङ्कटाचार्य के पुत्र माधव के ऋग्वेद-भाष्य की विविध-अनुक्रमणियों से मिलाकर, बहुत तरह के कोशों को देखकर निघण्टु का पाठ-संशोधन किया है। यह इनकी वैज्ञानिकता का सूचक है।

भूमिका में एक स्थान पर ही इन्होंने निम्नलिखित, पूर्वाचार्यों का उल्लेख किया है– (१) स्कन्दस्वामी की निरुक्त टीका, (२) वेदभाष्य - स्कन्दस्वामी, भवस्वामी, राहदेव, श्रीनिवास, माधवदेव, उवटभट्ट, भास्कर मिश्र, भरतस्वामी, (३) पाणिनि-व्याकरण, (४) उणादि-वृत्ति, (५) निघण्टु-व्याख्यायें क्षीरस्वामी, अनन्ताचार्य (६) भोजराज का व्याकरण (७) कमल-नयन का निखिल पद-संस्कार।

इस सूची में दुर्गाचार्य जैसे विख्यात टीकाकार का नाम न होना सूचित करता है कि देवराज दुर्गाचार्य से पूर्ववर्ती हैं। ये भोज का नाम कई बार लेते हैं तथा व्याकरण की एक 'देव' नामक पुस्तक का भी बहुधा उल्लेख करते हैं। इन्होंने किसी धातु-वृत्ति (सायण-माधव की नहीं) के भी उद्धरण जहाँ-

तहाँ दिये हैं। हरदत्त (११०० ई०) की पदमञ्जरी (काशिका की व्याख्या) का उद्धरण इन्होंने 'एतग्वा' (अश्वनाम) शब्द की व्याख्या में दिया है। ये भरतस्वामी के वेदभाष्य का उल्लेख करते हैं और सायण ने अपने वेदभाष्य में स्वयं ही देवराज का उल्लेख किया है। सायण का समय चूँकि १४ वीं शती है, इसलिए इनके कुछ पहले प्रायः १२०० ई० में अवश्य वर्तमान रहे होंगे।

(ग) दुर्गाचार्य (१३००–१३५०)– निरुक्त का तात्पर्य समझने में ये सबसे अधिक सहायक हैं। उसकी विस्तृत व्याख्या में इन्होंने अपने पाण्डित्य का पूरा प्रकर्ष दिखलाया है। स्थान-स्थान पर दार्शनिक-विवेचना में भी इनकी अद्भुत गति देखने में आती है। इस टीका की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इन्होंने निरुक्त के प्राय: सभी शब्दों को अपनी व्याख्या में उद्धृत किया है। इससे निरुक्त का पाठ ठीक करने में इनसे बहुत बड़ी सहायता मिलती है। इनकी भाषा यद्यपि सामान्यतया बहुत सरल है किन्तु दार्शनिक विवेचना के स्थान पर आदर्श दार्शनिक भाषा का प्रयोग करना भी ये जानते हैं। इनकी वृत्ति अपने क्षेत्र में अद्वितीय है। उन वैदिक मन्त्रों को, जिन्हें निरुक्त में अंशत: उद्धृत किया गया है, ये अपनी टीका में पूर्णत: उद्धृत करके समूचे की व्याख्या करते हैं। दुर्गाचार्य ने केवल १२ अध्यायों पर ही व्याख्या लिखो थी क्योंकि पुरानी पाण्डुलिपियों में इतना ही अंश मिलता है। परिशिष्ट की व्याख्या किसी ने बाद में जोड़ दी है।

दुर्गाचार्य की वृत्ति की पुष्पिका में लिखा मिलता है-"ऋज्वर्थायां निरुक्तवृत्तौ जम्बूमार्गाश्रमनिवासिनः आचार्य भगवदुर्गसिंहस्य कृतौ"- जिससे सभी विद्वानों ने सिद्ध किया है कि काश्मीर के जम्मू-प्रदेश के निवासी तथा संन्यासी थे। इनका गोत्र वासिष्ठ था तथा ये कापिष्ठल-संहिता के अध्येता थे क्योंकि निरुक्त में स्थित ऋग्वेद की ऋचा की व्याख्या ये नहीं करते और कहते हैं– "यस्मिन्निगमे एष शब्दः (= 'लोधम्') सा वसिष्ठद्वेषिणी ऋक्। अहं च कापिष्ठलो वासिष्ठः। अतस्तां न निर्ब्रवीमि। अर्थात् मैं कापिष्ठल वासिष्ठ हूँ, जिस ऋचा में 'लोध'– शब्द है वह वसिष्ठ की निन्दा करने वाली है। इसलिए उसकी व्याख्या नहीं करता हूँ। सायणाचार्य ने उपर्युक्त ऋचा की व्याख्या में निम्नलिखित टिप्पणी दी है- "पुरा खलु विश्वामित्रशिष्यः सुदाः नाम राजर्षिरासीत्। स च केनचित्कारणेन वसिष्ठद्वेष्योऽभूत। विश्वामित्रस्तु शिष्यस्य रक्षार्थमाभिऋग्भिः वसिष्ठमशपत्। ता ऋचो वसिष्ठा न शृण्वन्ति"। अर्थात् पूर्वकाल में विश्वामित्र के शिष्य सुदास नाम के राजर्षि थे। किसी कारण

से वसिष्ठ उनके द्वेषपात्र हो गये। विश्वामित्र ने शिष्य की रक्षा के लिए इन ऋचाओं से वसिष्ठ को शाप दिया। इन ऋचाओं को वसिष्ठ के गोत्र वाले नहीं सुनते।

इनकी ऋज्वर्थवृत्ति की सबसे प्राचीन पाण्डुलिपि १३८७ ई० की मिली है तथा यह बोड्ले (ऑक्सफोर्ड) पुस्तकालय में सुरक्षित है। कीथ ने इस तिथि को सत्य माना है। यह पाण्डुलिपि भृगुक्षेत्र (बम्बई राज्य) में लिखी गयी थी। इस आधार पर डा० सरूप ने अनुमान किया है कि पाण्डुलिपि को जम्मू से बम्बई जाने में ५० वर्ष तो अवश्य ही लगे होंगे, अतएव दुर्गाचार्य का समय १४वीं शती का आरम्भ मानना चाहिए। या तो ये देवराज के समकालीन थे या कुछ बाद में हुए होंगे।

ऋग्वेद के प्रसिद्ध भाष्यकार उद्गीथ (जिन्होंने स्कन्दभाष्य को आगे बढ़ाया था, जैसा कि वेंकटमाधव का कथन है) दुर्गाचार्य की कृति से परिचित मालूम पड़ते हैं, इस आधार पर कुछ लोग दुर्ग को सातवीं शताब्दी का मानते हैं किन्तु इस युक्ति में कोई बल नहीं है। यह सम्भव है कि १३ वीं शताब्दी के हों किन्तु उतना पूर्व ले जाना अनुचित है। पं० भगवद्दत्त ने दुर्गाचार्य को गुजरात का निवासी माना है।

(ग) महेश्वर (१५०० ई०)–

इन्होंने भी निरुक्त पर टीका लिखी है जो खण्डशः प्राप्त हुई है। स्कन्द और महेश्वर की टीकाओं की पाण्डुलिपियों से सुधार कर डा० सरूप ने तीन भागों में प्रकाशित कराया है। महेश्वर ने निरुक्त के टीकाकार के रूप में किसी बर्बरस्वामी का उल्लेख किया है जो स्कन्दस्वामी को छोड़कर कोई दूसरे नहीं। दुर्गाचार्य का उल्लेख ये पूर्वटीकाकार के रूप में करते हैं। दुर्ग को पूर्वत्व-प्राप्ति के लिए १५० वर्ष का अवकाश देना पर्याप्त है। इस आधार पर इनका आविर्भावकाल १५०० ई० के आसपास होना चाहिए।

इनके अलावे निघण्टु और निरुक्त के अन्य अनेक टीकाकारों के उल्लेख भर मिलते हैं, उनके कोई ग्रन्थ प्राप्त नहीं हैं। सम्भव है संसार के अज्ञात कोने में वे टीकायें मिल जायें जिनसे शोधकर्ता विद्वानों का उपकार हो।

(ङ) आधुनिक विद्वानों के कार्य (१८००- १९६०)– कतिपय आधुनिक विद्वानों ने भी निरुक्त पर टीकाएं लिखी हैं या निरुक्तशास्त्र को समृद्ध करने का श्लाघनीय प्रयास किया है जिनका नामोल्लेख आगे किया

जा रहा है- रॉथ, प्रो० मैकीशान, पं० सत्यव्रत सामश्रमी, लुण्ड, प्रो० राजवाड़े, डा० सिद्धेश्वर वर्मा, श्रीविष्णुपद भट्टाचार्य, पं० मुकुन्द झा बख्शी, पं० सीताराम शास्त्री, पं० ब्रह्ममुनि स्वामी, डा० उमाशङ्करशर्मा 'ऋषि', डा० रामाशीष पाण्डेय आदि।